जैव-विविधता और बौद्धिक सम्पदा अधिकार

उत्कर्ष घाटे

पिछली सहस्राब्दि ने भारत को सॉफ्टवेयर और प्रौद्योगिकी जैसे बौद्धिक क्षेत्रों में एक विश्व शक्ति की हैसियत में उभरते देखा है। लेकिन इसी के साथ भारत की जैव-विविधता और पारम्परिक ज्ञान को लेकर कई लड़ाइयां भी सौगात स्वरूप मिलीं। मसलन, नीम, हल्दी और बासमती के कुछ खास उपयोग अमरीका में पेटेंट करा लिए गए। भारत की पारम्परिक सम्पदा पर थोपे इन विदेशी एकाधिकारों को लेकर काफी बवाल मचा। हल्दी को लेकर तो भारत सरकार ने न केवल लड़ाई लड़ी, बल्कि उसके पेटेंट को रद्द भी करवा दिया। बासमती पर विजय अभी भी अप्राप्य बनी हुई है, लेकिन नीम के पेटेंट को लेकर यूरोपीय अदालतों में सवाल उठे हैं। यह लेख इन्हीं मुद्दों पर, खास तौर पर इस सिलसिले में उभरने वाली चुनौतियों व रणनीतियों पर केन्द्रित है।

जैव प्रौद्योगिकी के छात्रों के लिए यह मसला खास महत्व का है क्योंकि यह एक ऐसा उद्योग है जो शायद जल्दी ही विश्व अर्थव्यवस्था के आधे भाग को गढ़ सकेगा। जैव-विविधता को कच्चे माल की तरह बरतते हुए जैव प्रौद्योगिकी जल्द ही फसल की कीट और दबाव प्रतिरोधी कुछ नई किस्में उपजा सकेगी। साथ ही यह नई दवाओं तथा खनन के दौरान उत्पन्न हुए कचरे के जीवाणुपरक पाचन जैसे साफ-सफाई के नए तरीकों पर बल दे सकती है। इनमें से अधिकांश ईजादों का पेटेंट होगा इसलिए इस खेल पर हमें अपनी पकड़ बनाना ज़रूरी है।

वैश्विक पेटेंट

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, आईपीआर) का रूप विभिन्न देशों में अलग-अलग है (देखे बॉक्स-1)। इस तरह कोई भारतीय पेटेंट किसी दूसरे देश में (जैसे कि अमरीका में या अमरीकी पेटेंट भारत में) अपने आप वैध नहीं हो जाता। यही कारण है कि हर देश के भीतर एक नया पेटेंट हासिल करना ज़रूरी होता है जिससे लागत और प्रयास बढ़ जाते हैं। इन मुश्किलों को कम करने के लिए विकसित देशों ने आईपीआर कार्यप्रणाली को वैश्विक विस्तार देने के कई प्रयास किए हैं। इस तरह के सबसे महत्वपूर्ण प्रयास की शुरुआत 1994 में जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एण्ड टेरिफ (जीएटीटी या गैट) नामक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के साथ हुई। इसमें व्यापार सम्बंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार (टीआरआईपीएस या ट्रिप्स) समझौता शामिल है, जो प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों से जुड़ी तमाम घरेलू और विदेशी ईजादों को संरक्षण देने हेतु सदस्य देशों को बाध्य करता है। इसके मुताबिक सन् 2005 से कोई भी अमरीकी पेटेंट भारत में और कोई भी भारतीय पेटेंट अमरीका में प्रभावी हो सकता है। प्राकृतिक वनस्पतियों, पशुओं और उनके प्रजनन के प्राकृतिक तरीकों को तो पेटेंटीकरण से मुक्त रखा जा सकता है, किन्तु सुक्ष्मजैविकी को नहीं। फसल की नई किस्मों को पेटेंट या किसी अन्य कारगर व्यवस्था के ज़रिए संरक्षित किया जा सकता है। पेटेंट के द्वारा संरक्षण की अवधि का समान रूप से 20 वर्ष होना और इसमें उत्पादन की प्रक्रियाओं, उत्पादों या दोनों का संरक्षण अनिवार्य है (देखें बॉक्स-2)।

इन बदलावों ने स्वास्थ्य और खाद्य के क्षेत्रों में गम्भीर चिन्ताएं पैदा कर दी हैं, खासकर उन देशों में जिनमें अभी हाल तक या तो आंशिक रूप से या फिर बिलकुल ही आईपीआर संरक्षण उपलब्ध नहीं कराया जाता था। उदाहरण के लिए भारत कृषि क्षेत्र में कोई पेटेंट मान्य नहीं करता है। यहां सिर्फ औषधि क्षेत्र में प्रक्रियागत पेटेंट दिया जाता है, वह भी मात्र सात वर्षों के लिए। इससे भारतीय कम्पनियों को देश से बाहर पेटेंट-प्राप्त औषधियों का आयात करने, उनकी निर्माण पद्धति में थोड़ा नयापन लाने और फिर इन नवीनीकृत औषधियों

भारत कृषि क्षेत्र में कोई पेटेंट मान्य नहीं करता है। यहां सिर्फ औषधि क्षेत्र में प्रक्रियागत पेटेंट दिया जाता है, वह भी मात्र सात वर्षों के लिए। इससे भारतीय कम्पनियों को देश से बाहर पेटेंट-प्राप्त औषधियों का आयात करने, उनकी निर्माण पद्धति में थोड़ा नयापन लाने और फिर इन नवीनीकृत औषधियों को भारत के प्रक्रियागत पेटेंट अधिकार के माध्यम से सुरक्षित करने में मदद मिलती है। लेकिन इससे हो रही औद्योगिक उथल- पुथल के परिणामस्वरूप विकसित देशों ने भारत को उसके पेटेंट कानून में संशोधन करने हेतु बाध्य किया कि वह प्रक्रियागत पेटेंट के साथ-साथ उत्पाद एकाधिकार के लिए भी जल्द ही आवश्यक योजना तैयार करे। यह विपरीत इंजीनियरी (यानी भारत के दवा निर्माताओं द्वारा अपनाए जाने वाले आयात-विघटन-पुन:संयोजन तकनीक) का अन्त होगा जो एक औद्योगिक संकट पैदा करेगा जिससे दवाएं महंगी हो जाएंगी। बीज, अनाज और दूसरे जैव तकनीकी उत्पाद भी पहले के मुकाबले महंगे हो जाएंगे।

को भारत के प्रक्रियागत पेटेंट अधिकार के माध्यम से सुरक्षित करने में मदद मिली। फिर यहां औषधियों का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया गया और सस्ती मज़दूरी और साधनों के चलते उन्हें विदेशी औषधियों के मुकाबले काफी कम कीमतों पर विदेशों में बेचा गया। इन सस्ती औषधियों ने इनके मूल विदेशी उत्पादकों को निहत्था करते हुए वहां के बाज़ार को साफ कर दिया। इस औद्योगिक उथल-पुथल के परिणामस्वरूप विकसित देशों ने भारत को उसके पेटेंट कानून में संशोधन करने हेतु बाध्य किया कि वह प्रक्रियागत पेटेंट के साथ-साथ उत्पाद एकाधिकार के लिए भी जल्द ही आवश्यक योजना तैयार करे। यह विपरीत इंजीनियरी (यानी भारत के दवा निर्माताओं द्वारा अपनाए जाने वाले आयात-विघटन-पुन: संयोजन तकनीक) का अन्त होगा जो एक औद्योगिक संकट पैदा करेगा जिससे दवाएं महंगी हो जाएंगी। बीज, अनाज और दूसरे जैव तकनीकी उत्पाद भी पहले के मुकाबले महंगे हो जाएंगे।

जैव चोरी

विकसित देशों के उद्योग विकासशील देशों के खोटे माल और चुराई गई तकनीकी से होने वाले नुकसान को लेकर काफी असंतोष व्यक्त करते हैं। एक नई औषधि के बनने में 10 से 20 साल का समय और लगभग 40 करोड़ डॉलर लगते हैं। चूंकि औषधियों की नकल व उसे तैयार करना आसान है, इसलिए इस बड़ी लागत की रक्षा करने में आईपीआर का औचित्य समझा जा सकता है। हालांकि ऐतिहासिक घटनाएं इस तर्क को खोखला साबित कर देती हैं। अमरीका जैसे देश ने अपनी ज़्यादातर फसलें अपने पड़ौसियों से हासिल की हैं। इसके अलावा विकसित दुनिया ने विकासशील देशों से औषधीय वनस्पतियों, रंगों, मसालों आदि की लूट भी की जिसकी परिणति अन्ततः भारत, दक्षिण अमरीका और दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्वेषण और उन पर फतह हासिल करने में हुई। भारत की सर्पगन्धी (*रैवॉल्फिआ सर्पेंटीना*) नामक वनस्पति से तैयार रेस्पिरिन जैसी उच्चरक्तचाप की दवाओं ने विदेशी औषधि निर्माताओं को भारी समृद्धि बख्शी। पिछले दशक के दौरान केरल के पट्टाम्बि किस्म के चावल की जीन का उपयोग दक्षिण-पूर्व एशिया की चावल की फसल में भूरी टिड्डों (ब्राउन लीफ हॉपर) के लिए प्रतिरोधकता पैदा करने हेतु किया गया था। पट्टाम्बि उपजाने वाले किसान आज भी गरीब बने हुए हैं जबकि बीज कम्पनियां फल-फूल रही हैं।

इसी तरह कटिबंधीय क्षेत्र से जो मुनाफा विकसित दुनिया ने हथियाया उसकी भरपाई उसने कभी नहीं की। इतना ही नहीं, निर्मित उत्पाद पेटेंट किए गए और उन्हें काफी ऊंची कीमतों पर उन देशों में भी बेचा जाता रहा जिन्होंने इनके उत्पादन के लिए कच्चा माल या बुनियादी ज्ञान उपलब्ध कराया था। आईपीआर चूंकि व्यापारिक ईजादों को ही संरक्षण प्रदान करते हैं, जैव संसाधनों के घरेलू और अभी चल रहे उपयोगों पर बन्दिश नहीं है। इसीलिए नानी-दादी या आयुर्वेदिक वैद्य चूर्ण या आसव बेचना जारी रख सकते हैं। हालांकि वे निर्मित औषधियों से कमाए गए मुनाफे में हिस्सेदारी का दावा नहीं कर सकते। इस जैव डकैती यानी सार्वजनिक ज्ञान तथा संसाधनों के इस नाजायज़ शोषण और एकाधिकार को लेकर विकासशील देशों में उत्तरोत्तर असंतोष व्याप्त होता जा रहा है।

विकसित देशों का हित

जैव विविधता के क्षरण और लुप्त होने की तेज़ होती प्रतिक्रिया को रोकने या धीमा करने को लेकर चिंतित हुए दुनिया के ज़्यादातर देशों ने 1992 के संयुक्त राष्ट्र के जैव विविधता पर केन्द्रित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (कन्वेंशन ऑन बायोडाइवर्सिटि, सीबीडी) में चर्चा की। सीबीडी मुख्यतः विकासशील देशों के दबाव के चलते संरक्षण को बढ़ावा देने के साथ-साथ टिकाऊ उपयोग और लाभ के न्यायसंगत बंटवारे को भी प्रोत्साहित करता है। एक तरह से वह प्रत्येक देश की जैवविविधता के संसाधनों पर उनके एकल अधिकारों का समर्थन करता है। इसके अनुसार कोई देश किसी दूसरे देश की फसलों या दवाओं को बिना उसकी पूर्वानुमति के हड़प नहीं सकता है। उष्ण कटिबंधीय देशों के सामने न झुकने की अपनी मंशा के

बॉक्स 1 : बौद्धिक सम्पदा अधिकार (इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, आईपीआर)

आई.पी.आर किसी ईजाद के प्रथम आविष्कारक को उस ईजाद के एकमात्र निर्माता और विपणनकर्ता के बतौर सरकार की ओर से प्रदान किया गया एक निश्चित अवधि का संरक्षण है। इसके तहत कोई भी अन्य व्यक्ति उस ईजाद का निर्माण और विपणन तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसने इसके लिए आई.पी.आर. धारक को रॉयल्टी का भुगतान कर लाइसेंस प्राप्त न कर लिया हो। प्रतिस्पर्धा के अभाव के कारण आई.पी.आर. धारक कितनी ही ऊंची कीमत वसूल कर सकता है क्योंकि ज़रूरतमन्द उपभोक्ताओं के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं होता। यह अलग बात है कि संरक्षण अवधि बीत जाने के बाद कोई भी व्यक्ति उस संरक्षित ईजाद का उत्पादन और विपणन कर सकता है, जिससे कीमतें फिर गिर सकती हैं। विषय-वस्तु, सार्वजनिक प्रकटन, संरक्षण-अवधि आदि के आधार पर आई.पी.आर. कई वर्गों में विभाजित है। कॉपी राइट कलात्मक अभिव्यक्तियों (मसलन साहित्यिक कृतियों आदि) के लिए 50 वर्षों का संरक्षण प्रदान करता है। पेटेंट (एकस्व) प्रधानतः औद्योगिक ईजादों को संरक्षण देते हैं। इसकी अवधि अलग-अलग देशों में 7 से 20 वर्ष है। सार्वजनिक ज्ञान को संरक्षण देने वाले कॉपीराइट और पेटेंट से भिन्न व्यापारिक भेद (ट्रेड सीक्रेट्स) हैं जो नुस्खों और फार्मूलों जैसी गुप्त सूचनाओं को संरक्षण प्रदान करते हैं ताकि उन तक नाजायज़ तरीके से न पहुंचा जा सके और उनका दुरूपयोग न किया जा सके। कोका-कोला के नुस्खे का प्रकरण इस मामले में प्रसिद्ध है। व्यापारिक भेदों का नवीनीकरण हर 7 वर्ष में कराना होता है। पौध संवर्धकों के अधिकार (प्लाण्ट ब्रीडर्स राइट्स) एकस्वों की ही तरह हैं, सिवाय इसके कि वे फसलों की नई किस्मों को 15 से 20 वर्ष तक के लिए संरक्षण प्रदान करते हैं। मार्कों (ट्रेडमार्क्स) का उपयोग लोगो (प्रतीक चिन्हों) आदि के संरक्षण के लिए किया जाता है। भौगोलिक संकेतों (जिओग्राफिकल इण्डीकेशन्स) का उपयोग किसी उपभोक्ता वस्तु (जैसे शैम्पेन वाइन या दार्जिलिंग चाय) के नाम की स्थानीय सम्बद्धता का संरक्षण करने के लिए होता है। बाद के दिनों में इण्टीग्रेटेड सर्किट्स, डेटाबेस आदि के संरक्षण का भी प्रयत्न किया गया है।

पर्यावरण और सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय लोग जीवन के पेटेंट को सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण तथा पर्यावरण की दृष्टि से अटिकाऊ और अनैतिक कहकर उसका हर हाल में विरोध करते हैं। खास तौर से एकाधिकार गरीबों का अहित करते हैं, त्वरित लाभ की खातिर एकल संस्कृतियों को बढ़ावा देते हैं और सृजक के रूप में मनुष्य को गलत ढंग से पेश करते हैं।

चलते अमरीका एकमात्र ऐसा बड़ा देश है जिसने सीबीडी की सदस्यता नहीं ली है। गौरतलब है कि भारत समेत 170 देश सीबीडी के सदस्य देश हैं।

सीबीडी के प्रतिबंध 1992 के बाद के ही अधिग्रहणों पर लागू होते हैं, उससे पहले के अधिग्रहणों पर नहीं। मसलन इंग्लैण्ड के कीव गार्डन में आज़ादी से पहले की भारतीय वनस्पतियों का किसी भी भारतीय संस्थान के मुकाबले कहीं अधिक समृद्ध संग्रह मौजूद है। भारत से पूछे बगैर इन नमूनों का, विशेष रूप से जीवित वनस्पतियों का उपयोग जिनेटिक सामग्री प्राप्त करने हेतु नहीं किया जा सकता, जैसा कि बासमती के मामले में किया गया है। सीबीडी की पूर्वानुमति की शर्तें भी केवल गुप्त सूचना पर ही लागू होती हैं। दुर्भाग्यवश ज़्यादातर पारम्परिक ज्ञान जैसे कि आयुर्वेदिक ग्रन्थ, पुरा वानस्पतिक प्रकाशन, सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बंधित कम्प्यूटरीकृत सूचना आदि पहले से ही सर्वसुलभ हैं। इसके अलावा उद्योग अपने एजेण्टों से ग्रामीणों के पारम्परिक ज्ञान या संसाधनों को हथियाने में लगे हुए हैं। इन तमाम सीमाओं के बावजूद इस तरह की असंगतियों से लड़ने के लिए सीबीडी एकमात्र वैध मंच है। हालांकि सीबीडी का लाभ उठाने को उत्सुक देशों के लिए यह ज़रूरी है कि वे उपयुक्त कानून बनाएं। केवल कोस्टारिका, इक्वाडोर, फिलिपीन्स जैसे थोड़े से उष्णकटिबन्धीय देशों ने ही इस तरह के कानून बनाए हैं। भारत ने 1998 में एक मसौदा तैयार किया था किन्तु जनता की ओर से कोई दबाव न आने के कारण उसे अब तक न तो कानूनी रूप दिया जा सका न ही संसद में प्रस्तावित किया गया है।

पेटेंट युद्ध?

सीबीडी ने बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार की व्यवस्था से विधिवत लड़ाई का मार्ग प्रशस्त किया। पर्यावरण और सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय लोग जीवन के पेटेंट को सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण तथा पर्यावरण की दृष्टि से अटिकाऊ और अनैतिक कहकर उसका हर हाल में विरोध करते हैं। खास तौर से एकाधिकार गरीबों का अहित करते हैं, त्वरित लाभ की खातिर एकल संस्कृतियों को बढ़ावा देते हैं और सृजक के रूप में मनुष्य को गलत ढंग से पेश करते हैं। लेकिन इन तमाम विवादों के बावजूद अगर हम डब्ल्यू.टी.ओ. (विश्व व्यापार संगठन) की हमारी स्वैच्छिक प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं करते तो हम उन बहुपक्षीय प्रतिबंधों को ही न्यौता देंगे जिनकी शुरुआत सिनेमा और सॉफ्टवेयर के कॉपीराइट के उल्लंघन के कारण मार्च, 2000 से आरम्भ हुए अमरीकी प्रतिबंधों के साथ हो चुकी है। इन प्रतिबंधों को टालने के लिए उत्सुक भारत सरकार तत्सम्बंधी आईपीआर विधेयक और संशोधन संसद में पेश कर चुकी है। सौभाग्य से डब्ल्यू.टी.ओ. के आदेश पर विचार करने के साथ-साथ ये विधेयक सीबीडी की भावना के अनुरूप पारम्परिक ज्ञान को, चाहे मौखिक ही सही, 'पूर्ववर्ती कौशल' के रूप में मान्यता देते हैं।

इन प्रतिरक्षात्मक रणनीतियों के अलावा वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) नामक प्रमुख सरकारी अनुसंधान एजेन्सी ने 'पेटेंट के लिए पेटेंट' की नीति को अपनाने की वकालत की है। इसने अमरीका में नीम जैसी भारतीय वनस्पतियों के विशेष उपयोग पर आधारित अनेक महंगे पेटेंटों की सुरक्षा का प्रबंध तो कर ही लिया है, हालांकि इसमें ऐसे उत्पाद शामिल नहीं हैं जिन्हें बाज़ार में अभी तक उतारा गया हो। यहां तक कि निजी क्षेत्र में भी कुछ भारतीय कम्पनियों के पास दुर्जेय एकस्वाधिकार (पेटेंट) मौजूद हैं। अचरज की बात नहीं कि भारत में मान्य सालाना पेटेंट का लगभग दो-तिहाई अब भी विदेशी कम्पनियों के हाथ में है। यह अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ सकता है। पेटेंट का आसन्न युद्ध आईपीआर कानूनों में संशोधन जैसी परिवर्तनकारी रणनीतियों की मांग करता है ताकि ईजाद

के विषय में उपलब्ध सार्वजनिक जानकारी का उजागर किया जाना कानूनी तौर पर रोका जा सके और इस जानकारी की छानबीन में कम्प्यूटरीकृत सूचना भण्डार का उपयोग हो सके।

सार्वजनिक ज्ञान का पंजीयन

विश्वसनीय डेटाबेस (सूचनाभण्डार) के लिए ज्ञान और संसाधनों के बारे में भ्रम उपजाने वाले मौखिक दावों से परे दस्तावेजी साक्ष्य आवश्यक होते हैं। इस तरह के साक्ष्य छलपूर्ण दावों की पोल खोल सकते हैं जैसा हल्दी के मामले में हुआ। एक देशव्यापी सूचना भण्डार तैयार करने के लिए तमाम स्कूल और कॉलेज स्थानीय विशेषज्ञों की मदद से अपने आसपास की जैव विविधता के बारे में सूचियां तैयार कर सकते हैं। शोध संस्थान इस सूचना-सामग्री को पहले से मौजूद सार्वजनिक सूचना भण्डार के साथ समायोजित कर सकते हैं। इस काम में योगदान करने वालों को संरक्षण, विकास और अभिलेखन के लिए प्रोत्साहन के तौर पर अनुदान उपलब्ध कराए जा सकते हैं। इस काम में जैव विविधता तथा वानस्पतिक किस्मों की रक्षा और कृषकों के अधिकार पर केन्द्रित मसौदा कानूनों के अन्तर्गत प्रस्तावित जैव विविधता तथा जीन कोष से मदद ली जा सकती है। सार्वजनिक सम्मानों के माध्यम से मान्यता, मीडिया प्रचार और प्रशिक्षण जैसे सामाजिक प्रोत्साहन भी इस मामले में महत्वपूर्ण हैं। जैव विविधता पर आधारित उत्पादों पर कर लगाकर तथा विविधता को नष्ट करने वाली तरीकों (जैसे उर्वरक सब्सिडी) पर रोक लगाकर इस कोष के लिए राशि जुटाई जा सकती है। भारत को तो ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय कोष की मांग भी करनी चाहिए। टीआरआईपीएस की ओर से इस तरह के सामाजिक दृष्टि से न्यायपूर्ण उपायों पर कोई मनाही नहीं है, इसलिए एक आत्मविश्वस्त और समृद्ध भविष्य की खातिर हमें इन उपायों को पूरी तरह से अपनाना चाहिए। *(स्रोत विशेष फीचर्स)*

बॉक्स 2 : एकस्वीकरण (पेटेंट) की प्रक्रिया

पेटेंट उन ईजादों के लिए मान्य हैं जिनके बारे में यह प्रमाणित हो चुका होता है कि वे नए, अज्ञात और उपयोगी हैं। सर्वविदित ज्ञान नवीन नहीं होता और इसीलिए वह एकस्व के योग्य नहीं है जैसे आयुर्वेदिक नुस्खे। अगर कोई चीज़ महज़ एक खोज है और मानवीय ईजाद नहीं है, जैसे कि प्राकृतिक जीवों की कोई नई प्रजाति, तो उसे ज्ञात माना जाएगा और वह एकस्व के योग्य नहीं होगी। ईजाद का एक ठोस स्पष्ट वाणिज्यिक उपयोग होना भी अनिवार्य है। इस प्रकार किसी बीमारी के इलाज के लिए महज़ एक वनस्पति या जड़ी बूटियों के अर्क के मिश्रण के उपयोग का ज्ञान अथवा नीम के काढ़े का एक कीटनाशक के रूप में उपयोग का ज्ञान पेटेंट के योग्य नहीं है। जबकि किसी औषधि/रसायन का परीक्षण, उसके क्रियाशील पदार्थों को अलग करना और उसे विपणन लायक बनाना एकस्व योग्य हो सकता है, उदाहरण के लिए नीम के अर्क को टिकाऊ बनाते हुए उसकी आयु को बढ़ाना। एकस्व के लिए किए गए आवेदन में पद्धति का इतना पर्याप्त विवरण होना ज़रूरी है कि उस विवरण के आधार पर उस कौशल में दक्ष कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से उस ईजाद को पुनरुत्पादित कर सके। सार्वजनिक जानकारी को पर्याप्त रूप से प्रकट किया जाना चाहिए ताकि मौलिकता को दर्शाया जा सके। अपर्याप्त, अस्पष्ट या छलपूर्ण प्रकटन की दशा में आवेदन रद्द किया जा सकता है। एकस्व अधिकारी तथा तकनीकी विशेषज्ञ, इस तरह के विवरणों के आधार पर आवेदन का परीक्षण करते हैं और इसके लिए वे अपने साहित्यिक स्रोतों तथा एकस्व दस्तावेज़ों की मदद ले सकते हैं। इसके अलावा एकस्व के दावों और उनके सार संक्षेप को सूचनार्थ तथा सम्भावित आपत्तियां आमंत्रित करने की दृष्टि से सार्वजनिक बनाया जाता है। यह कुछ वैसा ही है जैसा जब सरकार किसी बेनामी सम्पत्ति को अर्जित करती या बेचती है तो उससे पहले उस सम्पत्ति पर सम्भावित सार्वजनिक दावों को आमंत्रित करती है। भारत समेत अनेक देशों में ये पेटेंट सम्बंधी आपत्तियां, पेटेंट मान्य किए जाने के चार माह पहले, राजपत्र में सूचना जारी कर आमंत्रित की जाती हैं। दुर्भाग्यवश अमरीका में मान्यता पूर्व आपत्तियां नहीं होतीं, जबकि मान्यता के बाद किए गए दावों के माध्यम से एकस्व रद्द कराए जा सकते हैं। नवीनीकरण के शुल्क में होने वाली सालाना वृद्धि का भुगतान करते हुए एकस्व को जारी रखा जा सकता है।